सेल्युलाइड पर देशभक्ति: स्वतंत्रता संग्राम के दौरान भारतीय सिनेमा का प्रभाव

अनुजा अविनाश चौलकर | पिछले तीन वर्षों से मुंबई-स्थित भारतीय सिनेमा के राष्ट्रीय संग्रहालय में संग्रहालय शोधकर्ता और शिक्षिका के रूप में कार्यरत।

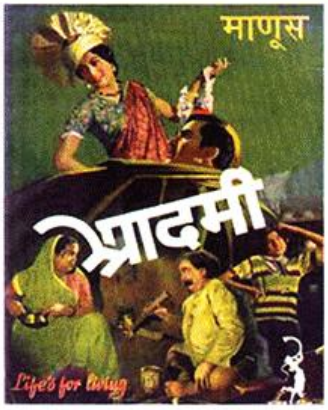

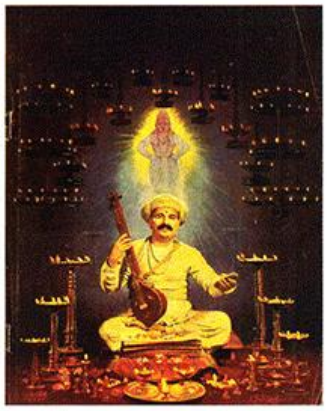

कहानी कहने की कलाभूमि भारत में हमेशा से ही कहानियां सुनाने की कई शैलियां रही हैं। अन्य की बनिस्पत सिनेमा अपेक्षाकृत नया है लेकिन मनोरंजन, शिक्षा, रोज़गार और कई लोगों के लिए ज्ञान के साधन के रूप में सर्वाधिक लोकप्रिय कला शैलियों में से एक है।

भारतीय सिनेमा को अब 100 से अधिक वर्ष हो चुके हैं और इसने स्वतंत्रता संग्राम के दौरान जनता की भावनाओं को जागृत करने, राष्ट्रवादी भावनाओं को बढ़ावा देने और औपनिवेशिक शासन को चुनौती देने वाले एक शक्तिशाली माध्यम के रूप में कार्य करने की एक महत्वपूर्ण भूमिका निभाई है।

अपने शुरुआती दौर में इसने देशभक्ति, वीरता और उत्पीड़न के खिलाफ़ विद्रोह जैसे विषयों को चित्रित दर्शाया। दादा साहब फाल्के की 'राजा हरिश्चंद्र' (1913), कांजीभाई राठौड़ की 'भक्त विदुर' (1921) और एच एम रेड्डी की 'भक्त प्रह्लाद' (1931) जैसी फ़िल्मों ने नैतिक साहस और धार्मिकता को दर्शाया जो भारतीय राष्ट्रवादी आंदोलन की भावनाओं को प्रदर्शित करती थी। इसने राजनीतिक-विमर्श के लिए एक मंच प्रदान किया क्योंकि अभिनेता और फिल्म-निर्माता राष्ट्रवादी आंदोलनों में सक्रिय रूप से भाग लेते थे और 1942 के भारत छोड़ो आंदोलन जैसे अभियानों का समर्थन करने के लिए अपने प्रभाव का इस्तेमाल करते थे और इस प्रकार स्वतंत्रता सेनानियों के संघर्ष को मजबूती प्रदान करते थे। पंडित रविशंकर और सलिल चौधरी जैसे संगीतकारों ने अपनी रचनाओं को राष्ट्रवादी उत्साह से ओत-प्रोत किया और ऐसे तराने बनाये जिनमें स्वतंत्र भारत की आकांक्षाएं रची बसी होती थीं।

सिनेमा ने भारत और विशेष रूप से महाराष्ट्र में स्वतंत्रता आंदोलन में महत्वपूर्ण भूमिका निभाई क्योंकि फिल्म उद्योग ने शुरू में मुंबई में ही जड़ें जमाई थी। मराठी सिनेमा ने अपनी फिल्मों के माध्यम से राष्ट्रवादी मूल्यों और आदर्शों का सक्रिय रूप से प्रचार किया। विष्णुपंत दामले, वी. शांताराम, भालजी पेंढारकर आदि जैसे निर्देशकों ने अपनी फिल्मों के माध्यम से आम लोगों के संघर्षों और आकांक्षाओं को दर्शाया और अपने कथानकों को स्वतंत्रता आंदोलन के प्रमुख लक्ष्यों के अनुरूप रखा।

'संत तुकाराम' (1936) और 'दुनिया ना माने' (1937) जैसी फिल्मों ने सामाजिक न्याय और स्वतंत्रता का पक्ष लेते हुए महाराष्ट्र की सांस्कृतिक विरासत का गुणगान किया। फिल्मों ने शिवाजी महाराज, रानी लक्ष्मीबाई आदि जैसी ऐतिहासिक हस्तियों को प्रतिरोध के प्रतीक के रूप में दर्शाया और इस प्रकार भावी पीढ़ियों को स्वतंत्रता के लिए संघर्ष करने के लिए प्रेरित किया। 'महात्मा फुले' (1954) और 'रामशास्त्री' (1944) जैसी फिल्मों ने स्थानीय नायकों और सांस्कृतिक प्रतीकों का यशगान किया और इस तरह स्वतंत्रता संग्राम के दौरान महाराष्ट्र के इतिहास और परंपराओं पर गौरव की भावना को सुदृढ़ किया।

इस प्रकार स्वतंत्रता संग्राम के दौरान भारतीय सिनेमा केवल मनोरंजन का साधन नहीं था बल्कि सामाजिक परिवर्तन और राजनीतिक जागृति का एक प्रभावपूर्ण साधन था। इसने जनमत को आकार देने, प्रतिरोध की भावना को पोषित करने और अंतत: भारत के 1947 में स्वतंत्रता प्राप्ति के अभियान में योगदान देने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाई। ❑